शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 दिसम्बर 2021
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

उत्तरखंड के लोकनाट्य एवं उनकी वर्तमान स्थिति

डॉ. दीपक चन्द्र सिंह मेहता
प्रधानाध्यापक
राजकीय कन्या प्राथमिक विद्यालय
अल्मोड़ा, उत्तराखंड, भारत

शोध संक्षेप

भारत में लोकनाट्य परंपरा सदियों से चली आ रही है। ऐसा समझा जाता है कि संस्कृत नाटकों के पराभव एवं मुगल शासन के आगमन के बाद लोगों का रुझान लोकनाट्यों की ओर बढ़ गया। इसके साथ ही देश में एक अलग तरह की नाट्य परंपरा आरंभ हुई जिसमें कहीं-कहीं मुगल सभ्यता एवं फारसी रंगमंच का प्रभाव भी देखा जा सकता है। हालांकि लोकनाट्य का उद्भव संस्कृत नाटकों से पूर्व हो गया होगा किन्तु प्रामाणिक रूप में इसका आरंभ लगभग दसवीं शताब्दी से माना जाता है। उत्तराखण्ड में लोकनाट्यों का आरंभ कब से हुआ इसके ऐतिहासिक अभिलेख अथवा स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं, किन्तु ग्रामीण क्षेत्रों में प्रचलित छोटे-बड़े लोकनाट्य खेल इत्यादि के रूप में प्राचीनकाल से ही चले आ रहे हैं। लगभग 12वीं शताब्दी में कत्यूरी राज्य के साथ जागर आदि का जो स्वरूप सामने आने लगा, वह कहीं न कहीं लोकनाट्यों को एक नई दिशा देने का कार्य करने लगा। लगभग 1860 के आसपास यहाँ पर रामलीला का मंचन भी आरंभ हो गया था। रामलीला, भड़ौ लोकनाट्य, स्वांग, जागर-वार्ता, पत्तर, पांडवानी, हिलजात्रा, हिरन-चित्तल, बगडवाल, खेल राधाखण्डी, जात्राजांग इत्यादि यहाँ के प्रमुख लोकनाट्य हैं। यहाँ के लोकनाट्यों को पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित करने में यहाँ के ग्रामीणों एवं जनजातियों का प्रमुख योगदान रहा है। प्रस्तुत शोध पत्र में उत्तराखंड के लोकनाट्य एवं उनकी वर्तमान स्थिति का विश्लेषण किया गया है।

भूमिका

लोकनाट्यों का जनजीवन से अत्यन्त घनिष्ठ संबंध है। यही कारण है कि यहाँ के उत्सवों, तीज-त्योहारों एवं पारिवारिक समारोहों आदि में लोकनाट्य की छाप किसी न किसी रूप में देखने को अवश्य मिलती है। यहाँ के लोकनाट्यों को स्त्री एवं पुरुष दोनों ही वर्गों द्वारा अपने-अपने ढंग से प्रस्तुत किया जाता है। जहाँ पुरुषों द्वारा अभिनीत लोकनाट्यों में पुरुष एवं स्त्री दोनों पात्रों का अभिनय पुरुष ही करते हैं, वहीं स्त्रियां जब स्वांग करती हैं तो वह भी पुरुष पात्रों का अभिनय स्वयं ही करती हैं। उनके द्वारा आयोजित होने वाले स्वांग पुरुषों से पृथक स्त्री टोलियों के बीच ही संपादित किये जाते हैं। वह अपने ही समूह में हास-परिहास के साथ इस प्रकार का मनोरंजन करती हैं। उनके इस स्वांग में पति, देवर, ननद व सास-बहू पर व्यंग्य वाले प्रसंग प्रायः किसी न किसी रूप में देखने को मिलते हैं। यदि हम पुरुषों द्वारा अभिनीत स्वांग की बात करें तो रामलीला में हँसाता-गुदगुदाता विदूषक, सीता स्वयंवर के अवसर पर विभिन्न देशों के राजाओं के पात्र एवं बरात में छोलिया नर्तकों के साथ महिला वेशधारी पुरुष के रूप में हम इसे देख सकते हैं। अब कुछ एक स्थानों पर रामलीलाओं में स्त्रियां भी इस तरह की भूमिकाओं का निर्वहन करने लगी हैं। लोकनाट्य

मनुष्य जीवन में रंग भरने का काम करते हैं। संघर्षशील जीवन में उत्साह का सनचार करने में इनकी महती भूमिका है। इनमें मनुष्य की उत्सवप्रियता भी झलकती हैं। इनमें सहज और शुद्ध रूप प्रतिबिम्बित होता है।

लोकनाट्य का अर्थ

विद्वानों के मतानुसार लोकनाट्य 'लोक' और 'नाटक' के योग से बना है, जिसमें लोक का अर्थ 'जन' होता है। यह 'जन' सामान्य जन का बोध कराता है। नाटक विशिष्ट अभिजात्य वर्ग के होते हैं, जिसकी भाषा भी केवल वही वर्ग समझ सकता है। नाटकों के लिए बहुत तामझाम की आवश्यकता होती है। जबकि लोकनाट्य ग्रामीण परिवेश के सामान्य व सरल वर्ग से जुड़े होते हैं जिन्हें साधारण ढंग से प्रस्तुत किया जाता है। इसी वर्ग को हम 'लोक' की श्रेणी में गिनते हैं।

"लोक' शब्द संस्कृत के 'लोकदर्शने' धातु में 'घ' प्रत्यय लगाकर बना है, जिसका अर्थ है - देखने वाला। साधारण जनता के अर्थ में इस शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर हुआ है।[1]

"सूक्ष्म रूप से 'लोक' का अर्थ है - दृश्य जगत् और उसमें सूक्ष्म विचरण। उत्तर वैदिक काल और महाभारत युग में 'लोक' का अर्थ पृथ्वी लोक और उसके निवासियों से किया गया है अर्थात् लोक से लौकिक अर्थ हुआ। 'लौकिक' का अर्थ है इन्द्रियगोचर जीवन। लोक के योग से कई अर्थ हुए, जैसे - लोकगीत, लोकगाथा, लोक-चरित्र, लोकाचार, लोकतंत्र, लोकधर्म, लोकरंजन, लोकवृत्त, लोकसंग्रह आदि। सभी शब्दों में लोक का अर्थ व्यापक मानव व्यवहार है अथवा मूल्य बोध से प्रेरित स्वीकृत व्यवहार की चेतना है।'[2]

डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने "लोक' शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम से न लेकर नगरों व गाँवों में फैली उस समूची जनता से लिया है जो परिष्कृत, रुचि संपन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन की अभ्यस्त होती है।"

देवेन्द्र सत्यार्थी के शब्दों में 'लोक' की परिव्याप्ति ज्यादा है तथा यह एक ऐसी चेतना की उपज है, जो मनुष्य और मनुष्य में फर्क नहीं करती, ग्रामीण और शहरी में भी नहीं।

डॉ.वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दों में 'लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है, जिसमें भूत, भविष्य और वर्तमान संचित है। अर्वाचीन मानव के लिये लोक सर्वोच्च प्रजापति है।

लोक शब्द अंग्रेजी शब्द 'फोक' (Folk) का पर्यायवाची है जो जर्मन शब्द 'Volkslied' का रूपांतरण है। डॉ0 षांिन्त जैन ने अपनी पुस्तक लोकगीतों के संदर्भ और आयाम में 'फोक' का अर्थ- 'लोक, राष्ट्र, जाति, सर्वसाधारण या वर्गविशेष' बतलाया है। *(The poetry of the people, by the people, for the people)*

कुछ प्रमुख विद्वानों ने लोकनाट्य की परिभाषा इस प्रकार दी है -

"नाट्य' एक व्यापक शब्द है। नाटक इसका एक प्रकार मात्र है। लोकनाट्य 'नाट्य' को इसी व्यापकता में लेते हैं।"[3]

डॉ. श्याम परमार के अनुसार - "लोक नाट्य लोक रंजन के आडम्बरहीन साधन हैं जो नागरिकों के मंच से अपेक्षित निम्न स्तर के परन्तु विशाल जन हर्षोल्लास से संबंधित है।"

डॉ. पिशेल के अनुसार - "कठपुतली के नाच से इसकी उत्पत्ति हुई।'

प्रो/ देवसिंह पोखरिया ने लिखा है - "जनसामान्य के रंगमंच को 'लोक रंगमंच' कहा जाता है।"

डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा ने लोकनाट्य की परिभाषा के संबंध में पूर्व निर्धारित कोई परिभाषा न होने के कारण इसे इस प्रकार विभाजित किया है -

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 दिसम्बर 2021
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

1 कोशगत व्याख्याएं

2 विद्वानों के मत

3 लोकधारणाएं

"भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में लोकचित्त को नाटक की वास्तविक प्रेरणा-भूमि और कसौटी कहा है। नाट्य-प्रयोग में लोक ही को सबसे बड़ा प्रमाण मानते हुए उन्होंने कहा है कि नाटक चाहे वेद हो या अध्यात्म से उत्पन्न हो तो भी वह तभी सिद्ध होता है जब वह लोकसिद्ध हो, क्योंकि नाट्य लोक-स्वभाव से उत्पन्न होता है :

"वेदाध्यात्मोप पन्नं तु शब्दच्छन्दः समन्वितम् ।
लोक सिद्ध भवेत नाट्य लोक स्वभाजम् ।
तस्मात् नट्य प्रयोगे तु प्रमाणं लोक इश्यत।।"[4]

उत्तराखण्ड में लोक नाट्य

उत्तराखण्ड में लोकनाट्य अलग-अलग क्षेत्रों में कहीं कम तो कहीं अधिक प्रचलित हैं। हर क्षेत्र के लोकनाट्यों की अपनी शैली एवं विषेशताएं हैं। यदि हम क्षेत्रीय दृष्टि से लोकनाट्यों के मंचन की बात करें तो 'हिरन-चित्तल' का आयोजन उत्तराखण्ड के अस्कोट पट्टी में भाद्रपक्ष दूर्वाष्टमी को गमरा (गौरा) के आगमन पर होता है। सीमांत क्षेत्र पिथौरागढ़ में 'हिलजात्रा', गढ़वाल के चमोली क्षेत्र में 'गन्ना-गन्नी', रूद्रप्रयाग, पौड़ी व चमोली क्षेत्र में 'बगडवाली', चमोली जनपद के सलूड़ ढूंगरा गाँव में 'रम्माण' और कुमाऊँ-गढ़वाल के लगभग सभी क्षेत्रों में 'स्वांग' प्रचलित हैं। रामलीला पूरे उत्तराखण्ड में प्रचलित है किन्तु इसे लोकनाट्य मानने पर विद्वानों में मतभेद भी है। रामलीला रंगमंच के पूर्ण प्रभाव में भव्य सेट में पेशेवर तरीके से मंचित किया जाता है। 'रतजग्गा' या 'रत्याली' गढ़वाल एवं कुमाऊँ दोनों क्षेत्रों में प्रचलित है, किन्तु वर्तमान में कुमाऊँ क्षेत्र में इसका प्रचलन गढ़वाल क्षेत्र की अपेक्षा अधिक है। गढ़वाल क्षेत्र में इसे खोड़िया के रूप में भी जाना जाता है। विवाह के अवसर पर जब दूल्हा बरात लेकर कन्या पक्ष की ओर रवाना हो जाता है, तब घर में स्त्रियां 'रत्याली' या 'रतजग्गा' का आयोजन करती हैं। वहीं होली के अवसर पर भी वह घर-घर जाकर 'स्वांग' का आयोजन करती हैं। इस कारण 'रत्याली' एवं होली में आयोजित होने वाले 'स्वांग' पूर्णतः स्त्रियों के लोकनाट्य हैं। यदि हम लोकगाथाओं पर आधारित मंचीय लोकनाट्यों की बात करें तो कई नाट्य संस्थाएं इस प्रकार के लोकनाट्यों का विविध मंचों पर मंचन कर रही हैं।

वर्तमान में लोकनाट्य

वर्तमान में उत्तराखंड के कुछ क्षेत्रों में लोकनाट्य विलुप्ति की ओर अग्रसर हैं तो दूसरी ओर कुछ क्षेत्रों में यह अन्य लोकनाट्यों से स्पर्धा कर अपनी विराटता का परिचय दे रहे हैं। लोकनाट्यों का परंपरागत मंचन करने वाले ग्रामीणों के साथ ही आज बहुत सारे पेशेवर कलाकार या रंगमंच के ग्रुप भी अपने-अपने तरीके से इन लोकनाट्यों को निखार कर उनका मंचन कर उन्हें समृद्धि की ओर ले जा रहे हैं। पिथौरागढ़ में स्थित भाव राग ताल नाट्य अकादमी हिलजात्रा आयोजित करने वाले गाँवों एवं कलाकारों के बीच जाकर इसे नया आयाम देने की कोशिश कर रही हैं। वहीं होली एवं विवाह आदि अवसरों पर रचा जाने वाला 'स्वांग' होली के अवसर पर तो अपनी विराटता लिये हुए है, किन्तु विवाह के अवसर पर इसका प्रचलन कुछ कम हुआ है, क्योंकि अब बरात में जाने वाली स्त्रियों की संख्या भी अच्छी-खासी बढ़ गई है। दिन की शादी के प्रचलन बढ़ने के बाद कम समय में अधिक कार्यों के दायित्व होने से भी विवाह के अवसर पर रचा जाने वाले 'स्वांग' का प्रचलन कम हो गया है। अन्य क्षेत्रों में आयोजित होने वाले लोकनाट्यों पर भी अब

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 दिसम्बर 2021
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

पेशेवर कलाकारों की पकड़ मजबूत होने से उनका आधुनिक रूप में प्रचार-प्रसार हो रहा है, जिससे लोकनाट्यों की समृद्ध परंपरा का यथोचित विकास हो रहा है। लोकगाथाओं पर आधारित लोकनाट्यों का नया ट्रेंड अब रंगमंच की दुनिया में लोकनाट्यों की पैठ के रूप में देखा जा सकता है। परंपरागत लोक कलाकारों की लोकनाट्य में जहाँ रुचि थोड़ी कम हुई है वहीं पेशेवर कलाकारों ने इसे क्षेत्र विशेष से निकाल कर अन्य क्षेत्रों में भी मंचित कर इसका दूर-दूर तक प्रचार-प्रसार करने का कार्य किया है, जिस कारण यहाँ के लोकनाट्यों को जानने और समझने का अवसर अन्य स्थानों के लोगों को भी मिल रहा है। विभिन्न मंचों में आयोजित होने वाले लोकगाथाओं पर आधारित नाटकों को लोकनाट्यों से कम नहीं आँका जा सकता है। इन नाटकों में लोकनाट्य तत्वों का बराबर ध्यान रखा जाता है। वर्तमान में शैलनट, युगमंच, श्रीधर विद्याधर कला केन्द्र, हुक्का क्लब, भाव राग ताल नाट्य अकादमी आदि कई नाट्य संस्थाएं लोक गाथाओं पर आधारित लोकनाट्यों का मंचन देश के विभिन्न क्षेत्रों में कर रही हैं। इसके अतिरिक्त 'रामलीला' एक ऐसा लोकनाट्य है जो यहाँ पर सर्वाधिक प्रचलित है, जिसके मंचन से शायद ही कोई क्षेत्र छूटा हो। सर्वाधिक प्रचलित लोकनाट्यों में इसका स्थान प्रमुख है। सदियों से कंठानुकंठ शैली में प्रचलित 'जागर' प्रथा आज भी यहाँ के लगभग प्रत्येक घर में किसी न किसी रूप में विद्यमान है। इसे धार्मिक लोकनाट्य की श्रेणी में रखा जा सकता है, क्योंकि इसमें लोकनाट्य के समस्त तत्व विराजमान हैं। 'स्वांग' सम्पूर्ण उत्तराखण्ड के गलियारों में प्रचलित है। विवाह, होली एवं रामलीला आदि के अवसर पर इसका आयोजन किया जाता है। थारू-बुक्सा लोग इसका आयोजन अपनी अलग शैली में करते हैं।

उत्तराखण्ड में प्रचलित कुछ प्रमुख लोकनाट्य

जिस प्रकार से उत्तराखण्ड अपने प्राकृतिक सौन्दर्य एवं लोकभावना के लिए प्रसिद्ध है उसी प्रकार यह अपनी संस्कृति और लोककलाओं के लिए भी जाना जाता है। इन लोककलाओं में लोकनाट्य भी एक है। उत्तराखण्ड के विभिन्न क्षेत्रों एवं उसकी बोलियों में यहाँ की कला एवं संस्कृति जगह-जगह फैली हुई है। इसी आधार पर लोकनाट्यों द्वारा यहाँ के जनजीवन में झलक देखने को मिलती है।

1 स्वांग - स्वांग उत्तराखण्ड का एक प्रमुख लोकनाट्य है। इसकी कथावस्तु या संवाद पूर्व से तैयार नहीं होते हैं। तात्कालिक स्थिति में इसका मंचन किया जाता है। पुरुष एवं स्त्रियों के स्वांग भिन्न-भिन्न होते हैं। जहाँ पुरुष वर्ग छोलिया नृत्य एवं रामलीला आदि में इनकी प्रस्तुति देता है, वहीं स्त्रियों द्वारा विवाह एवं होली के अवसर पर इसका मंचन किया जाता है। स्वांग उत्तराखण्ड की एक प्रमुख लोकनाट्य विधा है। इसके बिना यहाँ का मनोरंजन कुछ अधूरा-सा प्रतीत होता है। "स्वांग को नाटकों का आद्य स्वरूप माना जा सकता है और यह लोकजीवन में आज तक विद्यमान है। मोहन लाल बाबुलकर (1984) ने लोक नाट्य के धार्मिक और लौकिक या सामाजिक दो भेद करते हुए लौकिक नाटकों का एक उपभेद स्वांग माना है।"[5] स्वांग हास-परिहास युक्त मनोरंजन का महत्त्वपूर्ण साधन है। यह व्यावसायिक और अव्यावसायिक दो प्रकार के होते हैं। व्यावसायिक स्वांग का मंचन हुड़क्यार, बरात में छोलिया नृत्यकारों के साथ

जाने वाला नृतक आदि द्वारा किया जाता है। जबकि होली, विवाह के अवसर पर 'रत्याली' या 'रतजग्गा' तथा रामलीला के बीच-बीच में आने वाले विदूषक द्वारा मंचित होने वाला स्वांग तथा सीता स्वयंवर के अवसर पर विभिन्न राजा-महाराजाओं के पात्रों के स्वांग अव्यवसायिक होते हैं। उत्तराखण्ड में स्वांग की निम्न शैलियां प्रचलित हैं -

1.1 होली - होली के अवसर पर उत्तराखंड में स्वांग का विशेष मंचन होता है। मुख्यतः स्त्रियां ही स्वांग का आयोजन करती हैं। वह बारी-बारी से अपने आस-पड़ोस व गाँव में होली खेलने जाती हैं और होली गायन के दौरान उनके द्वारा विभिन्न स्वांग रचे जाते हैं। इसमें श्रंगारिक और कामोत्तेजक पक्ष प्रबल रहता है। होली के मधुर लोकगीतों के मध्य ढोलक की थाप के बीच इसका अपना अलग ही प्रभाव रहता है। इस दौरान कुछ स्त्रियां पुरुषों की पोशाक पहन कर उनका स्वांग करती हैं। इस बीच पुरुष अपनी अलग टोली बनाकर होली का आनंद लेते हैं और स्त्रियां अपनी टोली में नृत्य एवं गायन के साथ स्वांग का आयोजन करती हैं।

1.2 छोलिया नृत्य का बहरूपिया स्वांग - उत्तराखण्ड में एक जाति विशेष के लोग ढोल-दमाऊ के साथ छोलिया नृत्य से अपनी आजीविका चलाते हैं। छोलिया नृत्यकारों के साथ एक बहरूपिया भी होता है जो स्वांग रचकर इसमें जान भर देता है। विवाह आदि के अवसर पर इसका आयोजन अधिक होता है। इस कार्य में पारंगत कोई पुरुष, स्त्री का स्वांग धारण कर छोलिया नर्तकों के साथ चलता है। छोलिया नृत्य करने वालों को छोल्यार बोलते हैं। जब छोल्यार नृत्य करते हैं तब उनके साथ यह बहरूपिया भी नाना प्रकार के स्वांग रच कर दर्शकों की आँखों में एक अलग ही चमक पैदा कर देता है।

1.3 रत्याली या रतजग्गा - दूल्हा जब बारात लेकर लड़की वाले के यहाँ चला जाता है, तब पीछे से वर पक्ष की महिलाओं द्वारा स्वांग का प्रदर्शन किया जाता है। जिसे कुमाऊँ में 'रत्याली' और गढ़वाल क्षेत्र में 'रतजग्गा' या 'खोड़िया' कहा जाता है। 'रत्याली' या 'रतजग्गा' का अर्थ होता है रात भर जागने वाला कार्यक्रम। उत्तराखण्ड में पहले केवल रात की बरात होती थी। बरात के जाते ही स्त्रियां वर के घर में रत्याली का आयोजन करती थीं। रात वाली बरात की प्रथा के साथ अब दिन वाली बारात भी होती है। यह श्रंगारिक होने के साथ-साथ हास्य प्रधान भी होता है। इस मंचन में महिलाएं ही पुरुष पात्रों का भी अभिनय करती हैं। हास्यजनक लगने के बावजूद इसके प्रसंग काफी गंभीर एवं प्रभावपूर्ण होते हैं। 'रत्याली' या 'रतजग्गा' परंपरा की याद दिलाने का एक महत्त्वपूर्ण साधन है जो विषम परिस्थितियों के बावजूद अपना बर्चस्व कायम रख सका है। काल्पनिक प्रसंगों के आधार पर स्त्रियां तात्कालिक समयानुसार स्वांग का मंचन करती हैं। इसके लिए न तो वह पूर्व से कोई योजना बनाती हैं और न ही किसी प्रकार का कोई पूर्वाभ्यास करती हैं। हास-परिहास के इस उत्सव में बेहद निजी प्रसंगों को उकेरा जाता है। रत्याली या खोड़िया की पात्र अपने चरित्र के अनुरूप स्वयं वेशभूषा का चयन करती हैं। उन्हें इसके लिए पृथक से कोई व्यवस्था नहीं करनी पड़ती है। घर में जो कुछ भी उनके हाथ लग जाता है वह उसे ही अपनी वेशभूषा बना लेती हैं। प्रायः वे पुरुषों के वस्त्रों को अपनी वेशभूषा बनाती हैं। वेशभूषा और सज्जा की दृष्टि से यह बहुत कल्पनाशील होती है। पुरुष पात्रों का

अभिनय करने वाली स्त्रियां विशेष दर्शनीय होती हैं। रत्याली या खोड़िया प्रसंग में समय की कोई बाध्यता नहीं होती है। इसकी एक विशेषता यह भी है कि यह लिखित रूप में उपलब्ध नहीं है और न ही इसकी पटकथा रहती है। समयानुसार मंचन के दौरान ही पात्र इसके संवाद बना लेते हैं। 'रत्याली' की सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि इसका कोई निर्देशक नहीं होता है। यह आम जनजीवन का वास्तविक चित्र प्रस्तुत करने वाला होता है। आज जबकि टेलीविजन और सिनेमा का वर्चस्व होने के कारण हमारी संस्कृति के कई पहलू सिमटते जा रहे हैं, उसके बावजूद यह अपनी परम्परा को बनाये हुए है तो यह गौरव की बात होनी चाहिए।

2 रामलीला - उत्तराखण्ड में रामलीलाओं का आयोजन नगर-नगर व गाँव-गाँव में होता है। "रामलीला धार्मिक लोकनाट्य रूप में प्रचलित है तथा इसका प्रचलन अत्यन्त प्राचीन है। 'वाल्मीकि रामायण' में आए उल्लेखों से एक अनुमान यह भी किया जा सकता है कि इसका विकास रामकथा गायन की परम्परा से हुआ होगा।"[6] "इस कथा का प्रारम्भिक रूप 1000 या 800 ईसा पूर्व तक में मिलता है और निश्चय ही यह समय वाल्मीकि द्वारा रामायण के रचनाकाल से पहले का है।"[7] उत्तराखण्ड में कोई ऐसा स्थान नहीं होगा जहाँ रामलीला का मंचन न होता हो। इनमें अल्मोड़ा की रामलीला सर्वाधिक प्रतिष्ठित है। प्रतिवर्ष बहुत ही सुन्दर रामलीला का आयोजन किया जाता है। "उत्तराखण्ड में रामलीला का प्रारंभ 1860 ई. से माना जाता है। अल्मोड़ा के बद्रेश्वर नामक स्थान पर इसका आयोजन हुआ था। रामलीला उत्तराखण्ड की सर्वाधिक लोकप्रिय नाट्य विधा है। 1941 ई. में नृत्य सम्राट उदयशंकर ने छायाचित्रों के माध्यम से रामलीला का प्रदर्शन किया।"[8] यहाँ की रामलीला के संवाद गीत प्रधान हैं। अधिकांश रामलीलाओं का मंचन अवधी में होता है। स्व. ब्रजेन्द्र लाल साह के प्रयासों से कुमाउनी बोली में भी कुछ स्थानों में इसका मंचन आरंभ हुआ किन्तु यह एक सीमा क्षेत्र में ही सिकुड़ कर रह गया।

3 पांडव नृत्य - इस लोकनाट्य का मंचन गढ़वाल क्षेत्र में किया जाता है। वास्तव में यह पांडवों की कथा गाकर की जाने वाली नृत्यनाटिका है। "ढोल-दमाऊ के साथ पांडव-गाथा गाते हुए विभिन्न शैलियों में जो नृत्य किये जाते हैं उन्हें भावानुरूप अभिनय के कारण नृत्य नाट्य की श्रेणी में भी रखा जा सकता है।"[9] सैकड़ों वर्षों से उत्तराखण्ड के गढ़वाल क्षेत्र में महाभारत आधारित लोकनाट्य 'पांडव नृत्य' का मंचन हो रहा है। प्रो. हरिमोहन के अनुसार - "पांडव नृत्य गढ़वाल (उत्तराखण्ड) में परंपरागत रूप से लोकगीत और लोकनाट्य का मिला-जुला प्रचलित रूप है। प्रायः 'पांडव' को लोकनृत्य की एक शैली ही कहा गया है, लेकिन इसके प्रदर्शन से लगता है कि यह बहुत ही सशक्त लोकनाट्य विधा है।' उन्होंने बताया है कि पांडव नृत्य में औसतन अठारह प्रकार के तालों का नृत्य होता है, जो लोक विधान हुए भी अनूठी शास्त्रीयता लिए है। दिवा भट्ट अपनी पुस्तक 'उत्तराखण्ड के लोक साहित्य परम्परा में लिखती हैं कि-"बाबुलकर और नौटियाल ने इस नृत्य को पात्रों के क्रमानुसार वर्गीकृत करते हुए क्रमशः अर्जुनबाजानृत्य, भीमबाजानृत्य, नकुल बाजानृत्य, सहदेव बाजानृत्य, युधिष्ठिर बाजानृत्य, द्रोपदी बाजानृत्य और कुन्ती बाजानृत्य कहा है।"[10] इस कड़ी में 'चक्रव्यूह' भी यहाँ का एक महत्त्वपूर्ण लोकनाट्य है।

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 दिसम्बर 2021
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

4 भड़ा लोकनाट्य - भड़ा लोकनाट्य एक गायन शैली नाट्य है जिसमें एक व्यक्ति चारण शैली में वीरों अथवा राजाओं की वीरता की स्तुति गाता है। 'भड़ा लोक नाट्य' को 'भड़ौली' भी कहते हैं। यह एकल नाट्य रूप है। इसे गाने वाले को भाट या रैभाट कहा जाता है। भड़ा लोक नाट्य गाने वाले के साथ दो-चार सहगायक भी होते हैं। भाट एक लंबे कुर्ता व पगड़ी पहन कर हुड़के की थाप के बीच 'भड़ा गीतों' की प्रस्तुति देता है।

5 चक्रव्यूह - इस लोकनाट्य का मंचन गढ़वाल में किया जाता है। गढ़वाल में महाभारत पर आधारित कई लोकनाट्यों का मंचन किया जाता है, जिनमें से चक्रव्यूह भी एक है। इस नाटक में महाभारत के तेरहवें दिन हुए युद्ध में गुरु द्रोणाचार्य द्वारा 'चक्रव्यूह' रचा जाता है, जिसमें अभिमन्यु मारा जाता है। वैसे तो यह परंपरागत शैली में यहाँ सैकड़ों वर्षों से आयोजित किया जाता है। लेकिन वर्तमान में कई नाट्य संस्थाएं पारसी व रामलीला शैली का प्रयोग करते हुए इसे अपने-अपने तरीके से मंचित कर रही हैं। इसे यहाँ के ठेठ ग्रामीण जिनमें से गंधारी गाँव भी एक है, इसका मंचन परंपरागत शैली पंडवानी तथा बगडवाली शैली में करते हैं। विद्याधर कला केन्द्र, श्रीनगर, गढ़वाल के संस्थापक डॉ दाताराम पुरोहित इसे अपने मंच के माध्यम से देश-विदेश में प्रसिद्धि दिला चुके हैं। खुले स्थान में रंग-बिरंगे कपड़ों से सात द्वार बनाकर 'चक्रव्यूह' का निर्माण करके इसका मंचन किया जाता है।

6 जात्रा - आजादी के बाद कुछ बंगाली समुदाय के लोग उत्तराखण्ड के ऊधमसिंह नगर जनपद में आकर बस गये थे। वे अपनी संस्कृति एवं रीति-रिवाजों को भी साथ लेकर आये। उनकी लोक संस्कृति की अपनी विशेष पहचान है। इसमें उनका धार्मिक लोकनाट्य जात्रा भी शामिल है। चूंकि यह समुदाय वर्षों से यहाँ रह रहा है और अब यहीं का स्थाई निवासी है। इस कारण उनकी लोक संस्कृति से दूरी बनाकर नहीं रह सकते। ये लोग उत्तराखण्ड के अभिन्न अंग हैं इसी कारण इनकी लोक संस्कृति भी यहाँ की अन्य लोक संस्कृतियों की भांति यहाँ की लोक संस्कृति में रची-बसी है। इस कारण इसे उत्तराखण्ड की लोक संस्कृति में जोड़कर ही देखेंगे। उनका लोक नाट्य 'जात्रा' भी उत्तराखण्ड के प्रमुख लोकनाट्यों में गिना जायेगा।

7 लोकगाथाओं का नाट्य रूपान्तरण - उत्तराखण्ड के साहित्यकारों तथा संस्कृति प्रेमियों द्वारा यहाँ की लोकगाथाओं का नाट्य रूपान्तरण करके लोकनाट्य शैली में उनका मंचन किया जा रहा है। गढ़वाल क्षेत्र में बुड़देवा, बगडवाल, खेल, राधाखण्डी एवं पंडवानी, पत्तर या मुखौटा नाटक आदि पारंपरिक लोकनाट्यों का मंचन होता है। बड़ौली शैली में गायी जाने वाली लोकगाथाओं का नाट्य परिवर्तन करते हुए वर्तमान में उनमें संवाद जोड़कर उनका लोकनाट्य शैली में मंचन भी किया जा रहा है। इनमें माधो सिंह भण्डारी, तीलू रौतेली, पाँच भाई कठैत, नरू बिजूला, महासू, राणा घुमेरू, पंडवानी, गंगू रमोला, कालू भण्डारी, सात भाई कलूड़ा, चक्रव्यूह आदि प्रमुख हैं। इनमें से अधिकांश लोकनाट्यों का मंचन पारसी शैली में हो रहा है। गढ़वाल क्षेत्र में महाभारत के विभिन्न प्रसंगों पर आधारित लोकनाट्यों का मंचन बहुत होता है। इसी फ्रकार कुमाऊँ में भी हिरन चित्तल, हिलजात्रा, रामलीला, स्वांग आदि पारंपरिक लोकनाट्यों के अतिरिक्त कई नाट्य संस्थाओं द्वारा विभिन्न लोकगाथाओं का नाट्यरूपान्तरण कर उनका मंचन किया जा रहा है। इनमें राजूला मालूसाही,

हरू हीत, बाईस भाई बफौल (अजुआ बफौल), हरूसैम, दलजीत बौर, कलबिष्ट, गंगनाथ, भीमा कठैत, संग्राम कार्की, गोरीधीना, जागर गाथाएं आदि प्रमुख हैं।

निष्कर्ष

उत्तराखण्ड की लोकनाट्यों की अपनी एक समृद्ध विरासत है। लोक संस्कृति के शुभचिंतकों एवं पेशेवर कलाकारों ने परंपरागत एवं लोकगाथाओं पर आधारित लोकनाट्यों को क्षेत्र विशेष की परिधि से बाहर निकाल कर इसकी पहुँच का दायरा बढ़ाया है। इसी कारण यहाँ के लोकनाट्य ग्राम विशेष से यात्रा करते हुए सात समुद्र पार तक पहुँच चुके हैं। ह्र कला का कभी न कभी उदय अवश्य होता है। इसलिए हमें आदिकाल से चले आ रहे लोकनाट्यों के अतिरिक्त लोकतत्त्वों से परिपूर्ण लोकगाथाओं पर आधारित लोकनाट्यों को भी कभी न कभी लोकनाट्यों के सम्मुख रखना ही होगा। समय के अनुरूप सब कुछ बदलते रहता है। इस कारण लोकनाट्य विधा में भी समय के अनुसार निखार लाया जाता रहा है। विलुप्ति की ओर अग्रसर लोकनाट्यों को बचाने की आवश्यकता तो है ही साथ ही इसके साहित्य को लिपिबद्ध करने, इस पर शोधपरक कार्य करने एवं जिन क्षेत्रों में इन नाट्यों को मंचन होता है, उन्हें चिन्हित कर उन्हें प्रोत्साहित करने की भी नितांत आवश्यकता है। साथ ही इन्हें पाठ्य पुस्तकों में भी स्थान देने की जरूरत है। इनके संरक्षण एवं संवर्धन के लिए कोशिश करना चाहिए।

संदर्भ ग्रन्थ

1 जैन डॉ. शान्ति, लोकगीतों के संदर्भ और आयाम, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ 1

2 जैन डॉ. शान्ति, लोकगीतों के संदर्भ और आयाम, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ

3 त्रिपाठी डॉ. वशिष्ठनारायण, भारतीय लोकनाट्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 26

4 शर्मा डॉ कैलाश चन्द्र, भारतीय रंगमंच शास्त्र एवं आधुनिक रंगमंच जयभारती प्रकाशन 2009 इलाहाबाद, पृष्ठ 202

5 भट्ट दिवा, उत्तराखण्ड की लोकसाहित्य परंपरा, श्री अल्मोड़ा बुक डिपो, अल्मोड़ा, वर्ष 1998, पृष्ठ 47

6 त्रिपाठी डॉ. वशिष्ठनारायण, भारतीय लोकनाट्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 36

7 वात्सायन कपिला, पारम्परिक रंगमंच, पृष्ठ 90

8 पोखरिया प्रो. देवसिंह उत्तराखण्ड लोकसंस्कृति और साहित्य, नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया, पृष्ठ 312

9 भट्ट दिवा, उत्तराखण्ड की लोक साहित्य परम्परा, श्री अल्मोड़ा बुक डिपो, वर्ष 1995, पृष्ठ 44

10 भट्ट दिवा, उत्तराखण्ड की लोक साहित्य परम्परा, श्री अल्मोड़ा बुक डिपो, वर्ष 1995, पृष्ठ 44